**ओ३म्**

**‘महर्षि दयानन्द का वर्णव्यवस्था पर ऐतिहासिक उपेदश’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 आज से लगभग 140 वर्ष पूर्व हमारा समाज अज्ञान व अन्धकार से आवृत्त तथा रूढि़वादी परम्पराओं में जकड़ा हुआ था। सामाजिक विषमता अपने जटिलतम रूप में व्याप्त थी। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द ने वेद एवं वैदिक साहित्य से समाज सुधार के क्रान्तिकारी विचारों व मान्यताओं को प्रस्तुत किया था। यह भी तथ्य है कि वेद आदि शास्त्रों के विचारों व मान्यताओं को गलत रूप में प्रस्तुत कर अज्ञानी व स्वार्थी लोगों ने गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित आदर्श सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ा था जिन्हें स्वामी दयानन्द ने अपनी ऊहा शक्ति से यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर प्रचलित व्यवस्था का सुधार व परिष्कार किया। आज हम स्वामी दयानन्द जी का सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में प्रस्तुत उपदेश प्रस्तुत कर रहे हैं। उनके इन विचारों से ही स्वर्णिम व आधुनिक भारत के निर्माण की नींव पड़ी जिसका कुछ दिग्दर्शन वर्तमान भारत को देख कर किया जा सकता है। लक्ष्य अभी बहुत दूर है जिसके लिये हमें निरन्तर प्रयास करने होंगे।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 उन दिनों प्रचलित जन्मना वर्णव्यवस्था के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द कहते हैं कि क्या जिसके माता पिता ब्राह्मण हों, वह ब्राह्मणी-ब्राह्मण होते हैं और जिसके माता-पिता अन्य वर्णस्थ हों, क्या उनके सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकते हैं? इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि हां, बहुत से हो गये, होते हैं और आगे होंगें भी। **छान्दोग्य उपनिषद में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण वर्ण वाले हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।** वह प्रश्न करते हैं कि भला माता-पिता के रज-वीर्य से जो शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वह बताते हैं कि रज-वीर्य के योग से ब्राह्मण शरीर नहीं होता किन्तु **‘स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः। महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।’** यह मनुस्मृति का श्लोक है। इस का अर्थ है कि (स्वाध्ययेन) पढ़ने-पढ़ाने (जपैः) विचार करने-कराने नानाविध होम के अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारणसहित पढ़ने-पढ़ाने (इज्यया) पौर्णमासी, इष्टि आदि के करने, वैदिक विधिपूर्वक (सुतैः) धर्म से सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैश्य) वेदानुकूल ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ, (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादि-यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्कर्म और सम्पूर्ण शिल्पविद्यादि पढ़ के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्त्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है। क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते? फिर क्यों रज-वीर्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो? पौराणिक परम्परावादी कहता है कि मैं अकेला नहीं मानता किन्तु बहुत से लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं।

 पौराणिक महर्षि दयानन्द से पूछते हैं कि क्या तुम परम्परा का भी खण्डन करोगे? दयानन्द जी कहते हैं कि नहीं, परन्तु तुम्हारी उल्टी समझ को नहीं मानकर खण्डन करते हैं । फिर प्रश्न होता है कि हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है इस में क्या प्रमाण है? दयानन्द जी कहते हैं कि यही प्रमाण है कि जो तुम पांच-सात पीढि़यों ये आरम्भ हुई परम्पराओं को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त की परम्पराओं को मानते हैं। देखो ! जिस का पिता श्रेष्ठ उस का पुत्र दुष्ट और जिस का पुत्र श्रेष्ठ उस का पिता दुष्ट तथा कहीं-कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखने में आते हैं इसलिये तुम लोग भ्रम में पड़े हो। देखो ! मनु महाराज ने क्या कहा है--

 **येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।**

 **तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते।।**

 जिस मार्ग से किसी के पिता व पितामह चले हों, उसी मार्ग में सन्तान भी चले परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता-पितामह हों, उन्हीं के मार्ग में चलें और जो पिता-पितामह दुष्ट हों तो उन के मार्ग में कभी न चलें। क्योंकि उत्तम धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता इस को तुम मानते हो वा नहीं? वह कहते हैं कि हां, हां, मानते हैं। महर्षि आगे कहते हैं और देखो ! जो परमेश्वर द्वारा प्रकाशित वेदोक्त बातें हैं, वही सनातन और जो उसके विरुद्ध हैं वह सनातन कभी नहीं हो सकती। ऐसा ही सब लोगों को मानना चाहिये वा नहीं? अवश्य मानना चाहिये। जो ऐसा न माने, उस से कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो, यदि उस का पुत्र धनाढ्य होवे तो क्या अपने पिता की दरिद्रावस्था के अभिमान से धन को फेंक देवे? क्या जिस का पिता अन्धा हो तो उस का पुत्र भी अपनी आंखों को फोड़ लेवे? जिस का पिता कुकर्मी हो तो क्या उस का पुत्र भी कुकर्म को ही करे? नहीं-नहीं किन्तु जो-जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों उन का सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देना सब को अत्यावश्यक है।

 **जो कोई माता-पिता के रज-वीर्य के योग से वर्णाश्रम-व्यवस्था माने और गुण कर्मों के योग से न माने तो उससे पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन व मुसलमान हो गया हो, उस को भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहां यही कहोगे कि उस ने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। इस से यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं, वे ही ब्राह्मणादि और जो निम्न कुल का व्यक्ति भी उत्तम वर्ण के गुण, कर्म, स्वभाव वाला होवे तो उस को भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये।**

**(प्रश्न) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।**

 **ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यामशूद्रो अजायत।।**

 यह यजुर्वेद के इकतीवें अध्याय का ग्यारहवां मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और शूद्र पगों के उत्पन्न हुआ है। इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आदि न मुख होते हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते हैं।

 उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर महर्षि दयानन्द देते हैं कि इस मन्त्र का अर्थ जो तुम ने किया वह ठीक नहीं है क्योंकि यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति अर्थात् उसका कथन व वर्णन है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अंग नहीं हो सकते, जो मुखादि अंग वाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वशक्तिमान्, जगत् का स्रष्टा, धत्र्ता, प्रलयकत्र्ता, जीवों के पुण्य-पापों की व्यवस्था करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो सकता। इसलिये इस का अर्थ यह है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) **‘बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्’** (शतपथब्राह्मण) बल-वीर्य का नाम बाहू है वह जिस में अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय, (ऊरू) कटि के अधो और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम है जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे आवे व प्रवेश करे, वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीच अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थ में भी इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ किया है। जैसे- **‘यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त।’** इत्यादि। जिस से ये मुख्य हैं, इस से मुख से उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है अर्थात् जैसा मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अंग ही नहीं हैं तो मुख आदि से उत्पन्न होना असम्भव है। जैसा कि वन्ध्या स्त्री आदि के पुत्र का विवाह होना। और जो मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोल मोल है वैसे ही उन के शरीर का भी गोलमोल मुखाकृति के समान होना चाहिये। क्षत्रियों के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरू के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकार वाले होने चाहियें। ऐसा नहीं होता ओर जो कोई तुम से प्रश्न करेगा कि जो-जो मुखादि से उत्पन्न हुए थे उन की ब्राह्मणादि संज्ञा हो परन्तु तुम्हारी नहीं, क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्माणादि संज्ञा का अभिमान करते हो इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो हम ने अर्थ किया है वह सच्चा है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है। जैसा-

 **शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।**

 **क्षयित्रयाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्चात्तथैव च।।**

 यह मनुजी का वचन है। जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय तथा वैसे ही बाह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकुल में उत्पन्न हुंआ हो और उस के गुंण, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय। वैसे ही क्षत्रिय व वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष स्त्री हो वह-वह उसी वर्ण में गिनी जावें ।

 **धर्मचर्ययया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।1।।**

 **अधर्मचय्र्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।2।।**

 यह दोनों वचन आपस्तम्ब के सूत्र हैं। धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जाये कि जिस-जिस के योग्य होवे।1। वैसे अधर्माचरण से उत्तम वर्णववाला मनुष्य अपने से नीचे-नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है ओर उसी वर्ण में गिना जावे।2।

 जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे। और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं। अर्थात् वर्णसंकरता प्राप्त न होगी। इस से किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

 गुण, कर्म व स्वभाव से होने वाली वर्णव्यस्था से जुड़े एक महत्वपूर्ण प्रश्न को महर्षि दयानन्द ने प्रस्तुत किया है। वह कहते हैं कि जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो और वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाये तो उसके मां बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायेगा। इस की क्या व्यवस्था होनी चाहिये? इसका उत्तर वह यह कहकर देते हैं कि न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उन का अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिये कुछ भी अव्यवस्था न होगी। यह गुण व कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये। और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये। सभी अपने-अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी। इसके बाद महर्षि दयानन्द ने चारों वर्णों के कर्तव्य कर्म और गुणों का वर्णन किया है जिसके लिए सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का चतुर्थ समुल्लास देखना चाहिये।

 महर्षि दयानन्द ने यह उपदेश सन् 1874 में अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **‘सत्यार्थप्रकाश’** के चतुर्थ समुल्लास में प्रस्तुत किया है। उनके समय में वर्णव्यवस्था पूर्ण रूपेण जन्म पर आधारित थी और आज भी है परन्तु तब और अब में काफी अन्तर आया है। समाज में माता-पिता द्वारा अपनी सन्तानों के विवाह अपनी-अपनी जन्मना जाति में ही किये जाते थे। उन दिनों प्रेम विवाह का प्रचलन नहीं हुआ था। बाल विवाह बहुतायत से होते थे। बहुत सी कन्यायें अल्पायु में विधवा हो जाती थीं और उन्हें सारा जीवन अविवाहित रहकर अवर्णनीय दुःखों को सहते हुए व्यतीत करना पड़ता था। दलित बन्धुओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति भी शोचनीय थी। ऐसे समय में महषि दयानन्द ने इन क्रान्तिकारी विचारों को प्रस्तुत कर सही मायनों में सामाजिक क्रान्ति की थी। आज का समाज उनके विचारों से काफी सीमा तक प्रभावित हुआ है। जीवन व समाज के सभी पक्षों पर उन्होंने क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत कर उनका देश भर में प्रचार व प्रसार किया था। उसी का परिणाम विगत 140 वर्षों में देश की सामाजिक व आर्थिक स्थति में सुधार के रूप में दिखाई देता है। महर्षि दयानन्द ने देश व समाज को संवारने के लिए अपने जीवन की आहुति दी। उन्होंने विश्व इतिहास में अपूर्व आध्यात्मिक क्रान्ति भी की थी जिससे सभी मनुष्य सुखी जीवन व्यतीत करते हुए ईश्वर का साक्षात्कार तथा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। उनका संसार के प्रत्येक मनुष्य पर ऋण है जिसे चुकाया नहीं जा सकता।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**